परिचय

चार्वाक दर्शन या भारतीय भौतिकवाद दर्शन का प्रथम सम्प्रदाय माना जाता है। यह सबसे प्राचीन अवैदिक सम्प्रदाय भी है। चार्वाक बृहस्पति को अपना गुरु मानते हैं। 'चार्वाक' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है लेकिन विद्वानों का मत है कि बृहस्पति ने जिस पहले शिष्य को इस दर्शन की शिक्षा दी उसका नाम चार्वाक था। चार्वाक का शब्दिक अर्थ चारु और वाक् (मीठी वाणी) शब्दों से निगमित होता है। इस प्रकार चावार्क का अर्थ होता है मीठी वाणी बोलने वाला या मीठी वाणी जो उस सिद्धान्त के लिए प्रयोग किया जा सकता है जो उथले रूप में आकर्षक हो क्योंकि यह सिद्धान्त काम और अर्थ (सम्पत्ति) की प्राप्ति का समर्थन करता है। चार्वाक के मूल ग्रंथ विलुप्त हो गये है, लेकिन इसके विषय में जो पर्याप्त सूचना हिन्दू, जैन और बौद्ध साहित्य से मिलती है इससे स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिक परम्परा में न केवल आध्यात्मवाद अपितु जड़वाद का भी स्थान था। ऋग्वेद के लौक्य बृहस्पति ने जड़ को ही परमतत्व कहा। प्रारंभ में जड़वाद को संदेहवाद और अज्ञेयवाद से जोड़ कर देखा गया। परन्तु बृहस्पति ने इसे पृथक् स्वरूप प्रदान किया। प्रारम्भिक अवस्था में चार्वाक 'स्वभाववाद' में विश्वास करते थे। वे वस्तुओं के बाहरी गुणों के विपरीत किसी वस्तु के स्वाभाविक गुणों को ही उस वस्तु का वास्तविक कारण मानते थे। उन्होंने सृष्टि के मूल में किसी परासत्ता के अस्तित्व का खण्डन किया। आग गरम है, पानी ठण्डा है और वायु को स्पर्श किया जा सकता है। वस्तुओं में इस प्रकार के भेदों को किसने उत्पन्न किया? चार्वाक इस प्रश्न का उत्तर देते है कि वस्तुओं के ये गुण उसका स्वभाव हैं। वस्तुतः वस्तुएँ जो दिखती हैं वही हैं एवं उनकी प्रकृति अपने आप में सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त भिन्नता तथा क्रम की व्याख्या कर देती है। चार्वाक कार्य से भिन्न कारण की सत्ता स्वीकार नहीं करते। उसके अनुसार दो वस्तुओं को एक साथ देखने से एक को दूसरे का कारण नहीं कहा जा सकता। क्या हम अग्नि और धूम (धुंआ) को साथ–साथ देख कर वास्तव में यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि अग्नि धूम कारण है? प्रश्न है कि क्या हम तार्किक रूप से कह सकते हैं कि जहाँ धून है वहीं अग्नि है तथा मेरे जन्म के पहले भूत में ऐसा ही था और भविष्य में भी, जब मै नहीं होउंगा, यह सत्य रहेगा? यद्यपि, इस सम्प्रदाय के विषय में हमारी जानकारी अत्यंत अल्प है। इस दर्शन का अन्य दार्शनिकों ने जो खण्डन किया है उसी के आधार पर इसकी रूपरेखा कुछ उभर कर सामने आती है, तथापि, माधवाचार्य (विद्यारण्य स्वामी) के *सर्वदर्शनसंग्रह* नामक ग्रंथ में इस दर्शन पर एक अध्याय लिखा गया है लेकिन यह भी अत्यंत अल्प है तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारियों से अधिक नहीं है। चार्वाक को लोकायत भी कहा जाता है जिसका तात्पर्य है कि यह दर्शन स्वयं को सामान्य बुद्धि तक सीमित करता है। चूंकि अधिकांश दर्शन चार्वाक दर्शन को इसके भौतिकवादी सिद्धान्तों की आलोचना के क्रम में ही संदर्भित करते हैं। इसलिए यह सम्भव है कि ये दर्शन चार्वाक दर्शन के दोषों का अतिरंजन कर रहे हों और/अथवा भ्रमपूर्ण वर्णन।

चार्वाक की तत्वमीमांसा

भौतिकवादी होने के कारण चार्वाक का दावा है कि प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। इसलिए चार्वाक के लिए केवल प्रत्यक्षात्मक वस्तु ही ज्ञान का विषय है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता है, वह कल्पनात्मक है। इस आधार पर जड़ ही एकमात्र तत्त्व है, और संसार चार तत्त्वों, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से निर्मित है, ये चारों तत्त्व भौतिक हैं और प्रत्यक्षगम्य है। आकाश को पृथक् तत्त्व नहीं माना गया क्योंकि इसका प्रत्यक्ष नहीं होता। जड़ जगत् का

उपादान एवं निमित्त दोनों कारण है तथा यह सदा से है और सदा रहेगा। सभी चर–चराचर इसी के विकार है। बृहस्पति का सूत्र 'जड़ से ही जीवन उत्पन्न होता है' अन्तर्निहित करता है कि जड़ परम सत्ता है। *तत्त्वोपप्लवसिंह* में जयराशिभट्ट (वैतण्डिकों में से एक; कुछ विद्वानों का विश्वास है कि वह चार्वाक परम्परा के दार्शनिक थे) लिखते है कि प्रत्यक्ष एकमात्र प्रमाण है और यह इन्द्रिय–विषय (अर्थ) का सन्निकर्ष है। और प्रत्यक्ष को स्वीकारने का तात्पर्य है कि यहाँ तककि चार तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु) की सत्ता सिद्ध न होना, क्योंकि तत्त्व सूक्ष्म प्रकृति के होने के कारण हमारी इन्द्रियों के विषय नहीं हो सकते है।

चार्वाक की दृष्टि में आत्मा का स्वरूप

चार्वाक दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। चूँकि शरीर से पृथक् आत्मा नामक किसी वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं होता है। इसलिए आत्मा के लिए इस दर्शन में कोई स्थान नहीं है। चार्वाक के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु एक विशेष तरीके से मिलकर शरीर का निर्माण करते है। प्राण और चेतना शरीर के धर्म है। शरीर ही आत्मा है तथा शरीर से पृथक नित्य आत्मा का अस्तित्व नहीं है। वियोजन की अवस्था में जड़ के सूक्ष्मतम कण, जोकि जड़ के आधारभूत घटक है, में भी प्राण या चेतना नहीं रहते। उस समय, वे प्राणरहित और असंज्ञा की अवस्था में होते है। किन्तु, इन तत्वों के विशिष्ट एवं पारस्परिक संयोजन प्राण और चेतना को जन्म देता है। इसलिए चेतन शरीर ही आत्मा है। दूसरे शब्दों में चेतना या मन जड़ पदार्थों से उत्पन्न एक उपतत्व है। यह उपतत्व (चेतना) किसी एक तत्व के गुण का परिणाम नहीं है बल्कि यह बहुत से तत्वों के समुच्चय से उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, जिस प्रकार से मादकता का गुण 'जौ' के साथ अन्य पदार्थों को मिलाने से आ जाता है, यद्यपि उन पदार्थों में यह पहले से स्वतंत्र रूप में विद्यमान नहीं रहता है। उसी प्रकार चेतना भी जड़ तत्वों से उत्पन्न होती है। *सर्वसिद्धांतसारसंग्रह* में कहा गया है, "जिस प्रकार पान कत्था और चूने को मिश्रण से लाल रंग उत्पन्न होता है। उसी प्रकार जड़ तत्वों के मिश्रण से चेतना की उत्पत्ति होती है।" विचार जड़ द्रव्य का कार्य है। चेतना शरीर का धर्म है इसलिए मरने के बाद चेतना लुप्त हो जाती है तथा जड़ तत्त्व अपनी तरह के जड़ तत्त्व में मिल जाते है, केवल राख और धूल शेष रह जाती है। पुनर्जन्म और कर्म फल आदि अर्थहीन शब्द है।

चार्वाक अपने मत को इस प्रकार से स्पष्ट करते है। हम यह मानते है कि 'मैं' या 'अहं' के माध्यम से चेतना का कर्तृ, भोक्तृ और द्रष्टृ के रूप में परिचय मिलता है। चार्वाक के अनुसार 'मैं' शरीर को ही कर्ता, भोक्ता, द्रष्टा, के रूप में प्रदर्शित करता है। हम कहते है 'मैं जवान हूँ' 'मैं मोटा हूँ' 'मैं प्रौढ़ हूँ' आदि, इन कथनों से यही प्रतीत होता है कि शरीर ही आत्मा है। दोनों के पृथक् अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है। जब हम कहते है कि 'मैं लिख रहा हूँ' तो इसमें आत्मा का कर्ता के रूप में परिचय मिलता है। यदि लिखते समय कोई व्यक्ति घर में है तब आत्मा का परिचय उस घर में होता है। जब हम कहते है कि 'मैं घर में हूँ' तो इसका अर्थ यही होता है कि शरीर घर में है। जब मैं यह कहता हूँ कि 'मैं चन्द्रमा को अपने कमरे से देख रहा हूँ' तो यहाँ पर हमें 'मैं' का परिचय दृष्टा के रूप में तथा कमरे में होता है। यहाँ पर भी 'मैं' शरीर से पृथक् दृष्टा नहीं है तथा यही शरीर घर में भी है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि 'मैं गड्ढे में गिर गया और मुझे बड़ा कष्ट हुआ' तो यहाँ पर 'मैं' का ज्ञान भोक्ता के रूप में होता है और यहाँ भी इसका अर्थ शरीर ही होता है। इसलिए शरीर ही आत्मा है। चार्वाक 'मैं' के विभिन्न अर्थों का विलोपन करते हुए शरीर को आत्मारूप मानते हैं।

चार्वाक ऐसे किसी भी जीवन का खण्डन करते है और कहते है कि मृत्यु के बाद कोई जीवन नही होता जिसमें अच्छे कार्य का पुरस्कार मिलता है और बुरे कर्म अधिक के लिए दंड मिलता है। चार्वाक केवल इन्द्रिय सुख में विश्वास करते है और उच्च नैतिक जीवन का निषेध करते है। उनके अनुसार, प्रकृति साधु व असाधु के मध्य भेद नही करती। सूर्य साधु और असाधु पर समान किरणें डालता है। चार्वाक मानते हैं कि मनुष्य कमजोरीवश ईश्वर को मानते हैं। वास्तव में, कोई स्वर्ग और नरक नही है केवल यही जगत् है जहाँ हम रहते हैं।

चार्वाक किसी भी ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नही मानते। यदि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और करूणामय है, तो अपने अस्तित्व के विषय में जीवों के अज्ञान को क्यों नही दूर कर देता? ईश्वर पुण्य और पाप का न्यायाधीश भी नही है। यदि वह न्यायाधीश हो तो वह पक्षपात ओर निर्दयता के आरोप से नही बच सकता। इसलिए चार्वाक कहते हैं कि निर्दयी ईश्वर को मानने से अच्छा है उसे न मानना। कोई भीजगत् का सर्वोच्च शासक नही है। पृथ्वी का देवता राजा है। जो राज्य का संचालन करता है और साधु और असाधु को समाज में सही और गलत का निर्णायक है।

चार्वाक की ज्ञान मीमांसा

चार्वाक के अनुसार, ज्ञान का आश्रय शरीर है। वे इस विचार को 'उपस्थित में उपस्थित और अनुपस्थित में अनुपस्थित' के नियम से सिद्ध करते हैं। हम देखते है कि शरीर के रहने पर ही ज्ञान रहता है और नही रहने पर नहीं रहता है। ठीक वैसे ही जैस फूल का रंग तभी तक रहता है जब तक फूल रहता है। कोई भी व्यक्ति इस तथ्य से इंकार नही कर सकता कि जब तक इन्द्रियां रहती हैं तभी तक ज्ञान भी रहता है तथा जब इन्द्रियां नही रहती हैं तो ज्ञान भी नही रहता है। अतः अन्वय–व्यतिरेक (उपस्थित और अनुपस्थित के मध्य सहमति) से यह सिद्ध होता है कि ज्ञान का आश्रय इन्द्रियां हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'उपस्थित में उपस्थित और अनुपस्थित में अनुपस्थित' को युक्ति की तरह नही लेते। चूँकि चार्वाक अनुमान को प्रमाण नही मानते है इसलिए यही इस नियम का सहारा लेना चार्वाक की दृष्टि से अनुमान नही है अपितु प्रत्यक्ष ही है।

चूँकि चार्वाक के अनुसार इन्द्रियां पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, जैसे भौतिक तत्वों से निर्मित है इसलिए इन्द्रिय चैतन्यवाद का एक दूसरा नाम भूतचैतन्यवाद भी है। इस मत के खण्डन के लिए प्रतिपक्षी यह तर्क देते हैं कि वृद्धावस्था में हम बचपन की बातों का स्मरण करते हैं। लेकिन भूतचैतन्यवाद को स्वीकारने पर इस तथ्य (पुनः स्मरण) की व्याख्या नही हो सकती है। पुनर्स्मरण का कारण चेतना में संचित पूर्व के संवेदन (संस्कार) हैं। लेकिन भूतचैतन्यवाद में संस्कार (संवेदन) इन्द्रियों में अवस्थित हो सकते हैं और जड़ के परमाणुओं (भौतिक परमाणुओं) के नष्ट (लय) होने के कारण लड़कपन के इन्द्रिय बुढ़ापे में वर्तमान नही (अस्तित्व में नही हैं)। अतः इन्द्रियों में अवस्थित संस्कार भी नष्ट हो जाने चाहिए। किन्तु चार्वाक के मत में इस आपत्ति का उत्तर दिया जा सकता है। प्रथमतः, चार्वाक कार्य–कारण सम्बन्ध में विश्वास नही करते हैं। अतः इस आपत्ति के लिए उनका उत्तर होगा कि जिसका प्रत्यक्षगत अनुभव नहीं हुआ है उसे स्वीकारा नहीं जा सकता है (उस अनुभव की सत्यता नही स्वीकारी जा सकती है)। इसलिए, चार्वाक के मतानुसार, संस्कार पुनर्स्मरण का कारण नही है। पुनर्स्मरण का विषय पूर्व में प्रत्यक्ष वस्तु है। अतः अज्ञात वस्तु प्रस्तुत नहीं की जा सकती है। स्वभाव (प्रकृति) की विशिष्टता के कारण, विभिन्न स्थान

(दिक) और समय (काल) में विभिन्न रूपों के साथ विभिन्न वस्तुएं उत्पन्न होती हैं। इसके लिए कोई कारण स्वीकारने की आवश्यता नहीं है।

ज्ञान के विषय में चार्वाक की दृष्टि

चार्वाक के अनुसार ज्ञान अधिक दो भागों में विभक्त है; अनुभव और स्मरण। अनुभव को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; प्रत्यक्ष और कल्पना। प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो पंच ज्ञानेन्द्रियों– नेत्र, जिव्हा, नासिका, कर्ण (कान) और त्वचा (स्पर्श) के द्वारा होता है, जिनसे क्रमशः रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श और ध्वनि का ज्ञान होता है। वैध ज्ञान (प्रमाण) वह ज्ञान होता है जिसे भविष्य में किसी अन्य ज्ञान के द्वारा खण्डित नहीं किया जा सके। अकेली इन्द्रियाँ ही वैध ज्ञान के साधन हैं। इस प्रकार चार्वाक का मानना है कि अन्य तरह का ज्ञान, जैसे अनुमान और शब्द अवैध (अयथार्थ) हैं। प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य ज्ञान के रूप अयथार्थ हैं, अतः वे सभी कल्पना की प्रकृति वाले हैं। चार्वाक ने अनुमान और शब्द प्रमाण की अप्रमाणिकता के लिए निम्न प्रकार से तर्क प्रस्तुत किए हैः

चार्वाक के अनुसार, अनुमान वह प्रक्रिया है जहाँ हम किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता का दावा अन्य प्रतिज्ञप्ति के आधार पर करते हैं। अनुमान निगमनात्मक या आगमनात्मक हो सकता है, लेकिन चार्वाक ने अनुमान खण्डन किया है और इसलिए अनुमान के इन भेदों का चार्वाक के दर्शन में कोई स्थान नहीं है। जहाँ तक ज्ञान की समस्या है, चार्वाक के अनुसार अनुमान के निगमन और आगमन रूप एक दूसरे से अविभाज्यतः गुंथे हुए हैं। चार्वाक के अनुसार निगमन कुछ इस तरह का है–

सभी मनुष्य मरणशील हैं।

सुकरात मनुष्य है।

'इसलिए सुकरात मरणशील है' को नहीं स्वीकारा जा सकता है। जब तक हम यह नहीं जानते है कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' और 'सुकरात मनुष्य है' सत्य है, तक हम यह नहीं कह सकते कि 'सुकरात मरणशील हैं'। आगमन में, सार्वभौमिक प्रतिज्ञप्ति विशेष प्रतिज्ञप्तियों के आधार पर प्रमाणित की जाती है। हमने केवल व्यक्ति–विशेषों अ, ब, स को मरते हुए देखा और उसके आधार पर निष्कर्ष निकाला कि सभी मनुष्य मरणशील हैं। चार्वाक के अनुसार, यह अंधेरे में कूदने जैसा है। सार्वभौमिक प्रतिज्ञप्ति अवांछनीय है, क्योंकि यहाँ पर हम अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि अब तक देखे गये सभी मनुष्य मरणशील हैं। सार्वभौम निष्कर्ष निकालने का तात्पर्य है यह मानना कि भविष्य भूतकाल के समान होगा। लेकिन हमारे अनुभव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे सार्वभौम निष्कर्ष निगमित हो। अतः अनुमित प्रतिज्ञप्ति 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' प्रमाणिक ज्ञान नहीं हो सकता है। यदि यह प्रतिज्ञप्ति ही विश्वसनीय (प्रमाणित) नहीं है तो निगमनात्मक अनुमान के लिए कोई चारा नहीं है। निगमनात्मक अनुमान के विरुद्ध, चार्वाक का दूसरा आक्षेप है कि यह 'चक्रक दोष' से ग्रसित है। जब हम कहते हैं कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' तो उसमें (मानव होने के कारण) 'सुकरात मरणशील है' सम्मिलित है। अतः प्रतिज्ञप्ति 'सुकरात मरणशील है' हमें मूल प्रतिज्ञप्ति (सभी मनुशय मरणशील हैं) से भिन्न कोई नया ज्ञान प्रदान नहीं करती है।

चार्वाक की इस आलोचना के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' का निश्चय इस आधार पर किया जाता है कि मनुष्य और मरणशीलता के मध्य में

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

व्याप्ति (अविनाभाव साहचर्य) सम्बन्ध है। एक अन्य उदाहरण लेते हैं, हम यह कह सकते हैं कि 'जहाँ धुंआ है, वहाँ आग है।' क्योंकि धुंआ और आग के मध्य व्याप्ति सम्बन्ध है। लेकिन चार्वाक व्याप्ति स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि यह प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष योग्य सभी दृष्टांतों से परे है। सार्वभौम सत्यों का सत्यापन इसलिए संभव नहीं हो सकता क्योंकि उनका मूल प्रत्यक्षगम्य अनुभवों में नहीं है। हमारे अनुभव में ऐसा कोई आधार नहीं है जिससे हम सीमित प्रत्यक्षगत प्रसंगों से असीमित एवम् अप्रतिबन्धित सार्वभौमिक सामान्यीकरण कर सकें। अनुमान के विरूद्ध चार्वाक के तर्कों की परीक्षा के लिए और अधिक विचार करना आवश्यक है जिससे यह सिद्ध हो सके कि क्या अनुमान का पूर्णतः परिहार हो सकता है। यह स्पष्ट है कि अनुमान हमारे रोजमर्रा के ज्ञान का एक साधन है। उदाहरण के लिए, अपने सिद्धांत को समझाने के लिए जड़वादी भी भाषा का ही प्रयोग करेगा। भाषा ध्वनि का (शब्दपूर्वक) उच्चारण है। श्रोता जड़वादी द्वारा कहे गए अर्थ एवं विषय–सामग्री का (शब्दमय) ध्वनि से अनुमान करता है। यह तभी सम्भव है जब श्रोता शब्दों के अर्थ के लिए अपनी स्मृति पर विश्वास करता है। अतः चार्वाक सैद्धान्तिक रूप से ही अनुमान को नकार सकते हैं, लेकिन दैनन्दिन जीवन में समाज में अनुमान का प्रयोग किए बिना नहीं रह सकते हैं।

पुनः, चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को इसलिए प्रमाण मानते हैं क्योंकि हम पाते हैं कि अधिकांश मामलों में प्रत्यक्ष सदैव प्रमाणिक ज्ञान देता है। अब, हम स्वीकार कर लेते हैं कि प्रत्यक्ष विश्वसनीय स्रोत है, लेकिन हमारे पास यह कहने का क्या आधार है कि केवल प्रत्यक्ष ही ज्ञान का विश्वसनीय स्रोत है। चार्वाक के प्रत्यक्षसम्बन्धी विचार की सांख्य दर्शन सबसे अच्छे ढंग से आलोचना करता है। यह कहता है कि अनुमान का निषेध करने वाला कोई व्यक्ति कैसे किसी अन्य व्यक्ति के अज्ञान या संदेह या भ्रम को जान सकता है। किसी व्यक्ति में अज्ञान, संदेह और भ्रम को प्रत्यक्ष से नहीं जाना जा सकता है। व्यक्ति के व्यवहार या बातचीत से इनका अनुमान किया जा सकता है। अब हम चार्वाक कृत शब्द–प्रमाण के खण्डन पर विचार करते हैं। उनके अनुसार शब्द तभी प्रमाण हो सकता है जब वक्ता ईमानदार एवं विश्वसनीय हो। लेकिन हम यह कैसे जान सकते हैं कि वक्ता ईमानदार और विश्वसनीय है और यदि कोई ईमानदार है तो वह भविष्य में भी सदैव ईमानदार बना रहेगा? अतः, चार्वाक के अनुसार, शब्द प्रमाण नहीं है। इस प्रकार, चार्वाक के लिए शाब्दिक ज्ञान कल्पना का ही एक रूप है क्योंकि हम इस पर तभी विश्वास किया जा सकता है जब इसे प्रत्यक्षतः जान लिया जाए।

जहाँ तक शब्द–प्रमाण का सवाल है, चार्वाक वैदिक कथनों की प्रामाणिकता के खण्डन के लिए अधिक इच्छुक थे। इसलिए उसने वेदों की प्रामाणिकता का खण्डन कड़े शब्दों में किया। उसके अनुसार वैदिक कथनों में तीन दोष हैं– असत्यता, आत्म–व्याघात और पुनरुक्तता। वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान ब्राह्मणों के जीविकोपार्जन का साधन मात्र है, उनमें कोई वैधता या सत्य नहीं है। अश्वमेध यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति की बात कही गयी है लेकिन आज तक किसी को पता नहीं है कि स्वर्ग जैसी जगह होती भी है जहाँ मृत्यु के बाद व्यक्ति जाता है। चूंकि स्वर्ग जीवन रहते किसी को आज तक नहीं मिला इसलिए यह संदेहास्पद है कि कभी किसी को मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। इसी प्रकार पुत्र प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया जाता है। इसे भी सत्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। कुछ मामलों में इस यज्ञ के पश्चात कभी पुत्र होता भी है तो उसका कारण यज्ञ न होकर कुछ अन्य होता है। यह यह निश्चित है कि प्रत्येक यज्ञकर्ता पुत्र प्राप्त नहीं करता है। इन कथनों को अर्थ प्रदान करने के संदर्भ में पारम्परिक उक्तियां (ऐतिह्य) कहा जा सकता है;

न कि प्रमाण। किसी भी कथन की सत्यता उसके द्वारा संदर्भित वस्तु की प्रत्यक्ष उपलब्धि से सिद्ध होती है। वेदों द्वारा व्यक्त सत्यों का प्रत्यक्ष संभव नहीं है। अतः वेदों, जो अतीन्द्रिय सत्ताओं के बारे में बताते हैं, उनकी सत्यता को किसी भी प्रकार से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। चार्वाक का मानना है कि कोई भी कथन स्वतः प्रमाण्य नहीं होता है।

अनुमान और शब्द–प्रमाण की अवैधतता दिखलाने के पश्चात् चार्वाक–दार्शनिक मीमांसा दर्शन के द्वारा स्वीकृत ज्ञान के अन्य प्रमाणों के सन्दर्भ में दिखलाते हैं कि वे भी अवैध हैं। वे कहते है कि अर्थापत्ति के द्वारा प्राप्त ज्ञान कल्पना की श्रेणी का ज्ञान है। अर्थापत्ति उन्ही के लिये ज्ञान का प्रमाण हो सकता है जो पहले से यह जानते रहे हों कि कुछ निश्चित स्वीकृत अर्थों को किन्हीं अन्य दूसरे माध्यम से अप्रमाणित नहीं किया जा सकता। ऐसे मामलों में स्वयं ज्ञाता को पता होता है कि उसका ज्ञान कल्पित ज्ञान है। यह (ज्ञान), मैं कल्पना करता हूँ के रूपवाला है।

मीमांसकों के अनुसार जब यज्ञ कर्म किया जाता है तो उसके करने वाले को एक अदृष्ट या अपूर्व की प्राप्ति होती है। इस अदृष्ट की सत्ता अर्थापत्ति से सिद्ध होती है। दूसरे शब्दों में यज्ञ–क्रिया थोड़े समय में समाप्त हो जाएगी, परन्तु इससे उत्पन्न धर्म या अपूर्व स्वर्ग–प्राप्ति (इच्छित वस्तु की प्राप्ति) तक समाप्त नहीं होता। इस प्रकार का ज्ञान अर्थापत्ति से प्राप्त है। चार्वाक का प्रश्न है कि क्या इसे वैध कहा जा सकता है। उनका मानना है कि यह ऐतिह्य है, जोकि कोरी कल्पना है।

जहाँ तक अभाव का प्रश्न है इसका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण से माना जाता है। चार्वाक के मत में अभाव पूर्णतः असत् है। इसलिए, इस मत में, अभाव का ज्ञान कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार चार्वाक मत में अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रमाण नहीं स्वीकारे गये हैं। व्याघात से मुक्त प्रत्यक्ष एकमात्र प्रमाण है।

चार्वाक मन को पंच ज्ञानेन्द्रियों से पृथक नहीं मानते है। न्याय–वैशेषिक दर्शन सुख–दुःख के अनुभव के लिए मन को एक पृथक इन्द्रिय मानता है। चार्वाक के अनुसार, मन नाम की कोई इन्द्रिय नहीं है। अतः कड़े शब्दों में कहे तो मानस–प्रत्यक्ष (संवेदना) नहीं है। वे संवेदना की व्याख्या निम्नांकित प्रकार से करते है– त्वचा शरीर के अंदर और बाहर दोनों ओर समानरूप से उपस्थित है। अतः जो त्वचा का भाग आन्तरिक है वही मन या अन्तःइन्द्रिय है। चार्वाक का मत है कि इसी इन्द्रिय के कारण सुख–दुःख का बोध होता है। कई मामलों में सुख या दुःख स्पर्श के एक विशिष्ट प्रकार के अनुभव से उत्पन्न होता है और इसका आश्रय आन्तरिक त्वचा है। दूसरे शब्दों में, सुख एक प्रकार का स्पर्शात्मक बोध है। ठीक उसी प्रकार दुःख भी स्पर्शात्मक बोध है। इसी प्रकार इच्छा और द्वेश भी ज्ञान के प्रकार है। जब हम यह महसूस करते हैं कि अमुक साधन हमारी इच्छाओं की पूर्ति करेगा, तो हमारी इच्छा पूर्ति हो जाती हैय जैसे कि इष्ट–साधन से इच्छित फल प्राप्त होता है। जो हमारे लिए हानिप्रद है उसके लिए हम द्वेश करते हैं। इन सब का आधार भी इन्द्रियां ही हैं। इसी प्रकार पुनःस्मरण (प्रत्यभिज्ञा) भी इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होता है। इसका कारण कभी कोई अज्ञात विषय नहीं होता। बहुत से भौतिक संवेगों के कारण मानव भूतकाल में अनुभूत वस्तुओं का स्मरण करता है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि यह एक सामान्य नियम है, कि एक विशेष प्रकार की वेदना से एक विशेष प्रकार की वस्तु का ही पुनर्स्मरण होगा। यहाँ कारण–कार्य सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की वेदना बहुत सारे प्रत्ययों पर निर्भर करती है। इसलिए वेदना और अनुस्मरण में किसी प्रकार का कारण–कार्य संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता।

चार्वाक की भ्रम–विषयक दृष्टि

भ्रम के विषय में चार्वाक असत्खाति का आलम्बन लेते है। जब शुक्ति (सीप) को रजत (चांदी) के रूप में देखते है तो भ्रम होता है। प्रकाश के अभाव और दूरी के चलते शुक्ति के स्थान पर रजत दिखाई देता है जो वास्तव में वहाँ नही होता। जैसे चलती हुई ट्रेन में एक आदमी जब बराबर में लगे प्रकाश–स्तंभ और पेड़ को देखता है तो उसे लगता है कि वे समान गति से चल रहे हैं। यहाँ पर केवल सम्बन्ध मिथ्या है विषय नही। अर्थात् यहाँ गति ट्रेन से संबंधित है न कि प्रकाश–स्तंभ या पेड़ों से। भ्रमित व्यक्ति गति को वस्तुओं के साथ जोड़कर देखते है, जो वास्तविक है परंतु स्थिर है। इसलिए यहाँ केवल सम्बन्ध को गलत ढंग से प्रत्यक्ष किया गया है।

जीवन–दृष्टि

चार्वाक किसी प्रकार के आध्यात्मिक मूल्य मे विश्वास नही करते है। वह चार पुरूषार्थों में से दो 'धर्म और मोक्ष' का खण्डन करते हैं। अतः मानव को केवल दो पुरुषार्थों 'अर्थ' और 'काम' के लिए प्रयास करना चाहिए। चार्वाक का मत सुखवादी है। चार्वाक यह जानते है कि सुख का दुःख के साथ सम्बन्ध है। लेकिन उनका कहना है कि कोई अनाज को इसलिए नही फेंकता है कि इसमें भूसा है, कोई फूल को इसलिए नहीं तोड़ना बंद कर देता है कि उसमें कांटा है, कोई मछली को इसलिए नहीं खाना बंद कर देता है कि इसके हड्डी और कांटे हैं। पत्नी या संतान पृथ्वी पर स्वर्ग रचते हैं, और उनके वियोग से दुःख है। लेकिन जिसके जीवन मे प्यार नही है, सुख नही है, वह सर्वथा दुःखी है और नीरस है। चार्वाक स्वीकारते हैं कि दुःख सर्वत्र है, चाहे राजमहल हो और चाहे भिक्षुक की झोपड़ी। फिर भी यह संसार केवल दुःखों से ओत–प्रोत नही है। सुख दुःख से ज्यादा है। यदि ऐसा नही होता तो लोग जीने की चाह में मृत्यु से क्यों भयभीत रहते। हमें सुख को अपनाना चाहिए और दुःख को दूर रखना चाहिए। दुःख के भय से सुख को नही छोड़ना चाहिए। चार्वाक के अनुसार जीवन का उद्देश्य अधिकतम सुख की प्राप्ति है। यही सच्चा व्यापार है जिससे हम सुखी हो सकते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि चार्वाक का दृष्टिकोण मानवीय सारतत्त्व या लक्ष्य के विरुद्ध है। वे कहते हैं कि धर्म के बिना कोई प्रणाली मनुष्य के लिए उपयोगी नही है। यह सम्भव है कि वे सही हों। लेकिन हम यह सकते है कि चार्वाक दर्शन नीति–दर्शन का नया ढंग या नया आधार रचना चाहते हों। चार्वाक पशु–बलि और यज्ञ (इस आधार पर कि यज्ञ किसी की स्वार्थ–सिद्धि के लिए हैं) की निंदा करते है। यह निंदा चार्वाक के नीतिमीमांसीय प्रणाली के आधार को समझने में सहायक हो सकती है।

इस विषय पर बाद में चार्वाक दर्शन में तीन और मत आये। प्रथम मत के अनुसार, चेतना इन्द्रियों के कारण सत्तावान होती है। द्वितीय मत के अनुसार, 'प्राण शक्ति' कर्तृपन (चेतना) है तथा तृतीय मत के अनुसार ज्ञाता होने के कारण मन ही चेतना है। यद्यपि प्राण और मन को शरीर से पृथक् मानते हुए भी, उनका शरीर से पृथक् अस्तित्व नहीं माना गया है।

चार्वाक का यह मत कि शरीर ही आत्म है ने स्वाभाविक रूप से पुरजोर विवाद उत्पन्न किया। चूँकि अन्य सभी दर्शनों में आत्मा को विशेष स्थान प्राप्त है इसलिए उन सभी ने चार्वाक मत का पुरजोर खण्डन किया। चार्वाक के विरूद्ध उन्होंने अग्रलिखित युक्तियां प्रस्तुत कीं। सर्वप्रथम, उनके अनुसार यदि चेतना शरीर का धर्म है तो यह या तो अनिवार्य धर्म होगा या फिर आगुन्तक। यदि यह (चेतना) अनिवार्य धर्म है तो चेतना को शरीर से पृथक् नहीं किया जा सकता।

तब शरीर की समाप्ति के साथ ही इसका भी अंत हो जाएगा। लेकिन हम देखते है कि मूर्छा की अवस्था में और स्वप्नहीन निद्रा में चेतना शरीर से पृथक हो जाती है। अब, यदि यह आगन्तुक धर्म है तो चेतना को उत्पन्न करने वाली कोई उपाधि या अभिकरण अवश्य होना चाहिए। ऐसी स्थिति में चेतना को पूर्णतः शरीर का धर्म नहीं कहा जा सकता। पुनः जब कोई व्यक्ति स्वप्न से जागता है तो यह अपने शरीर को ही अपना कहता है न कि सपने में धारण किये गये किसी अन्य शरीर जैसे शेर आदि, के शरीर को। अतः अधिकांश विद्व ानों का मत है कि यह मान भी लिया जाए कि चेतना सदैव भौतिक शरीर से जुड़ी रहती है तो भी हम यह नहीं कह सकते कि प्राणी के मरने के साथ ही चेतना भी नष्ट हो जाती है। यह किसी अन्य ढंग से निरंतर बनी रह सकती है। माना यह स्थिति सिद्ध नहीं की जा सकती परंतु चार्वाक के मत में संदेह होना ही उसके मत के निषेध के लिए पर्याप्त है। पुनः यदि चेतना का जुड़ाव शरीर के साथ स्थाई मान भी लिया जाये तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि चेतना शरीर का धर्म है। उदाहरण के लिए, आँख पूर्ण अंधेरे में देखने में असमर्थ होती है लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि नेत्रीय प्रत्यक्ष प्रकाश का धर्म है। इसी प्रकार, हम यह कह सकते है कि शरीर चेतना के व्यक्त होने के लिए एक माध्यम है। एक दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण युक्ति यह है कि हम बाह्य इन्द्रियों से दूसरे का केवल शरीर देखते हैं लेकिन उसके मन के भावों विचारों, सुख–दुःख आदि को नहीं देखते है, ये केवल उसी व्यक्ति को ज्ञात होते हैं। यदि चेतना शरीर का धर्म होती तब अन्य व्यक्ति के मनोभावों सुख–दुःख आदि का साक्षात् ज्ञान दूसरों को भी हो जाता लेकिन ऐसा नहीं होता। अतः शरीर दूसरे के द्वारा भी जाना जा सकता है लेकिन चैतन्यगत धर्म के बोध के लिए स्वचेतना को पृथक् मानना आवश्यक है। एक दूसरे उदाहरण से भी इस समझा जा सकता है कि बीमार का दाँत दर्द दाँत के डाक्टर की दृष्टि से बीमार व्यक्ति का है न ही उसका स्वयं का। चार्वाक के विरोधी इससे निष्कर्ष निकालते हैं चेतना भौतिक शरीर का गुण नहीं है बल्कि किसी और का धर्म या गुण है अथवा यह (चेतना) एक स्वतन्त्र तत्त्व है जिसकी अभिव्यक्ति शरीर के माध्यम से होती है।

ईश्वर अथवा किसी परासत्ता (प्रत्ययगोचर) का निषेध

चूँकि यह सम्प्रदाय प्रत्यक्ष ज्ञान में विश्वास करता है। अतः यह किसी भी परासत्ता का निषेध करता है। यह न तो ईश्वर को मानता है और न ही किसी ऐसे अंतःकरण को जो मनुष्य का पथ प्रदर्शक है। भारतीय दर्शन के अन्य सभी सम्प्रदाय नैतिकता एवं एक
मार्ग जिसमें मृत्यु के बाद जीवन के लिये पर्याप्त स्थान है को स्वीकार कर